Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 SHISRRJ | Volume 2 | Issue 1 | ISSN : 2581- 6306

मध्य कालीन बिहार में दास प्रथाः एक अध्ययन

डॉ0 रामलखन सिंह
पूर्व शोध छात्र,
इतिहास विभाग,
पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार, भारत।

सारांश– प्राचीन काल से दास प्रथा की परम्परा मध्यकाल में जारी रही। लेकिन इस काल में हमें कई परिवर्तन देखने को मिलते है। सर्वप्रथम दासों की संख्या में अधिक वृद्धि हुई। दूसरा दासत्व सबके लिए निर्दिष्ट हो गया। जबकि कौटिल्य ने आर्यो को दास बनाने का विरोध किया है। तीसरा मौर्य काल की तरह दासों को आर्थिक क्रियाकलापों में शामिल नहीं किया गया। इस काल में दास घरेलू और निजी सेवा से अधिकाधिक संबध रहें। चतुर्थ यधपि दासों के साथ उचित व्यवहार के कुछ प्रमाण मिलते है, लेकिन इसे अपवादों के रूप में ही देखा जा सकता हैं । सामान्य रूप से दासों के साथ अर्ध मानवीय व्यवहार होता रहा। मुसलमानों की सत्ता सुव्यवस्थित होने बाद दासों की स्थिति में बेहतरी के कुछ संकेत मिलने शुरू हो जाते हैं।

मुख्य शब्द– दास प्रथा, मुसलमान, कौटिल्य, मध्यकाल, प्राचीन काल, सामंतवादी आर्थिक।

आर्थिक व्यवस्था के अध्ययन में दास प्रथा का अध्ययन एक महत्वपूर्ण पक्ष है। इसका अध्ययन विशेष रूप से सामंतवादी आर्थिक ढांचे के अध्ययन के लिए आवश्यक हो जाता है। भारत में दास प्रथा का अध्ययन इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है कि यहॉ यूरोपीय दास प्रथा से इसकी पर्याप्त भिन्नता इतिहासकारों ने स्वीकार किया है। इस संदर्भ में यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि भारतीय स्रोतों एवं समाज में दासों की विधमानता प्राचीनकाल से रही है।[1] प्राचीन भारत में दासों की स्थिति में परिवर्तन के चिन्ह भी दृष्टिगोचर होते हैं। इसी धारा में पूर्व मध्य काल में दासों की स्थिति का अध्ययन भी महत्वपूर्ण हो जाता है। इससे विशेष रूप से दो सैद्धांतिक ढांचे में देखना उपर्युक्त होगा। प्रथम, प्राचीन काल से चली आ रही धारा के ढांचे में और दूसरा पूर्व मध्यकालीन सामंतवादी समाज के ढांचे में ।

दास शब्द का उल्लेख वैदिक काल से ही मिलना आरंभ हो जाता है। इस काल में आर्यो से भिन्न दासों को एक सामाजिक समूह के रूप में स्वीकार किया गया है, लेकिन इस संदर्भ में यह मान्यता स्वीकार की गयी है कि इसका आधार सांस्कृतिक एवं नृरजातिय विभिन्नता थी न कि आर्थिक भिन्न्ता।[2] अर्थात इस काल में दास सिर्फ एक सामाजिक समूह था न कि उत्पादन स्वामित्व में आंतरिक कसौटी पर अलग समूह के रूप में। भारतीय स्रोतों में दासों का उल्लेख पर्याप्त है और यह भी प्रमाण है कि इस काल से पहले बुद्ध काल से ही दासों को उत्पादन कार्यो में लगाया गया। पाली त्रिपिटक में इसका पर्याप्त उल्लेख है।[3] इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि मेघास्थानीज को या तो भारत में दासों के प्रति स्वामियों के द्वारा किया गया व्यवहार निर्मल और सद्भावपूर्ण लगा हो या उसमें किसी विशेष क्षेत्र का ही उल्लेख किया हो।

मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था में दासों का महत्वपूर्ण योगदान था। त्रिपिटक की तुलना में कौटिल्य ने कहीं अधिक विस्तार से दासों का वर्गीकरण किया है। जहॉ त्रिपिटक में दासों के चार प्रकार बताये गये है कौटिल्य ने नौ प्रकार के दासों का उल्लेख किया है– उदर –दास, दंड प्रणीत, छज्जादत, दायागत, लब्ध आदि। केंद्रीय राजतंत्रिक व्यवस्था पर आधारित मौर्य समाज की स्थापना से दास प्रथा में अन्य रूपांतरण भी हुए। अभियान करके जबरदस्ती लोगों का अपहरण करने की नीति पर कौटिल्य द्वारा लगाये गये प्रतिबंधों का निर्वचन इसी प्रकार किया जा सकता है।[4] देश की राजनीतिक एकता के पश्चात इस प्रकार के अभियानों का अर्थ गौण हो गया। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप नगरों का उदय हुआ और व्यापारियों का प्रभाव बढ़ा। यह काफी तर्क संगत लगता है कि दास श्रम के द्वारा भूमि करसण का यह तरीका पर्याप्त सामान्य बात हो गयी थी। मौर्यो ने इसको समाप्त करने का प्रयास नहीं किया। अशोक के काल में कलिंग के युद्ध के पश्चात सहस्त्रों बंदियों की प्राप्ति हुई और यह असंभव नहीं लगता है कि उनमें से कुछ तो मगध के बाजारों तक पहुंचे और कुछ को पूर्ण उत्पादक गतिवधियों में लगाया गया होगा जिनके माध्यम से मध्य गंगा घाटी की संस्कृति के तत्वों का प्रसार दुरस्थ क्षेत्र में किया गया।[5]

गुप्त काल में दासों की स्थिति में कमोबेश निरंतरता ही देखी जा सकती है। साथ ही कुछ परिवर्तन के तत्व भी दृष्टिगोचर होते है। इस काल में सबसे बड़ा परिवर्तन यह आया कि अब शुद्रों को दास बनाया जाने लगा।[6] सभी शुद्र दास नहीं थे, लेकिन कुछ शुद्र अवश्य ही दास थे। दास–दासियों से युक्त राज्य का भोग करना

उत्कठ साधना का फल माना जाता था।[7] शांति पर्व में कहा गया है कि शुद्र की सृष्टि प्रजापति ने अन्य तीन वर्णो के दास के रूप में की है। इसीलिए उसे दास धर्म के पालन का उपदेश दिया गया है।

गुप्त काल में इस बात के अनेक प्रमाण मिले है कि दास प्रथा में कुछ कमजोरी यानि आरंभ हो गयी थी। दास मुक्ति के अनुष्ठान का विधान सर्वप्रथम नारद ने किया है।[8] रामशरण शर्मा के अनुसार, ''ऐसा लगता है कि वर्ण व्यवस्था ही कमजोर पड़ गयी थीं और इस कारण दास प्रथा में भी कमजोरी आयी। वर्ण प्रथा का यह नियम था कि शुद्र को दास बनाना चाहिए, पर गुप्तकालीन पुराणों के वर्णन से पता चलता है कि वैश्य और शुद्र अपने धर्म का पालन नहीं करते थे– अर्थात किसान के रूप में अन्न पैदा कर वैश्य को नहीं देते थे और शुद्र द्विजों की सेवा करने को तैयार नहीं थे। घोर वर्णन संकट की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। बंटवारे और
धार्मिक भूदानों के फलस्वरूप भूमि छोटे छोटे टुकड़ों में विभाजित हो गयी थी, अतः छोटे कृषि क्षेत्रों में स्थायी रूप से अधिक शुद्र, दास और मजदूर रखने की आवश्यकता नहीं थी। इससे अधिकांश दासों को छांट दिया गया। यह दास प्रथा के कमजोर होने का प्रमुख कारण था।

मध्य युग के संक्रमण के रूप में जिसे पुराणों में कलयुग के विवरण के रूप में समझा जा सकता है, दास प्रथा पर आधारित उत्पादन पद्दति में आये परिवर्तनों पर विशेष बल दिया गया हैं। अंत्यो का मध्यों के रूप में रूपांतरण देखने को मिलता है, तो दूसरी ओर कृषि और व्यापार में लगे वैश्यों को शुद्रों के निकट लाने की चर्चा है। कुछ तो भूमिगत संपत्ति के विभाजन से और कुछ विदेशी आक्रमण द्वारा उत्पन्न बलवों के कारण दासों एवं सेवकों के विशाल समूहों को आश्रय देने वाले पुराने परिवारों की संख्या में कमी आने लगी।[9]

इसी प्रकार पूर्वकालीन विवरण से दास एवं दास प्रथा की जो स्थिति उभरती है उससे पूर्व मध्यकालीन समाज में इसके अध्ययन का एक ढांचा उपलब्ध हो जाता है। हमें यह स्मरण रखना है कि पूर्व मध्यकालीन स्रोतों में स्वतंत्र स्रोत एक भी नहीं है, जो इस काल में दासों के बारे में विश्लेषणात्मक सूचना उपलब्ध करायें। अधिकांश स्रोत पूर्व काल की स्रोतों की ही व्याख्ता प्रस्तुत करता हैं। इसलिए इस काल का भी अध्ययन अपेक्षित हो जाता है। पुनः दासों की स्थिति तुलनात्मक विश्लेषण और निरंतरता एवं परिर्वन के ढांचे में उसका अध्ययन अधिक सुलभ हो जाता है। पूर्वकालीन विवरण से यह स्पष्ट है कि दास प्रथा भारतीय समाज में अती प्राचीन

काल से रहा है। प्रारंभ में इसका आधार नृरजातीय था। मौर्य काल में दास प्रथा आर्थिक गतिविधियों से जुड़ गया तथा इस प्रथा हम राज्य के नियंत्रण के प्रयास को भी देखते है। गुप्तकाल में द्वैतपरकटा की स्थिति देखी जा सकती है। एक ओर दासों की संख्या में विस्तार होता है। उनके निर्देशित कर्मो में भी विस्तार होता है तो दूसरी ओर दास प्रथा में कमजोरी के लक्षण भी प्रकट होता है।

जहॉ तक दासों की आवश्कता से संबधित तथ्य है, उस समय के विधि ग्रंथों में यह प्रमाण मिलता है की दास केवल जीवनयापन के न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति के हकदार थे। मेधा तिथि का भी मानना है कि दास केवल भोजन और वस्त्र के हकदार थे।[10] अन्य विवरणों से ज्ञात होता है कि दास एवं दासियों को अपने मालिक के क्षमता अनुसार केवल भोजन और वस्त्र मिलना था तथा इससे आगे वह किसी भी वस्तु या
आावश्यकता की इच्छा नहीं रखेगा। दासियों की संतानों पर समाज पर एक भार के रूप में देखा जाता था और उसे असमाजिक गतिविधियों का सबसे बड़ा स्रोत समझा जाता था। इन विवरणों से दासों की जिंदगी के सोचनीय स्थिति का आसानी से पता चलता है। यह सही है कि आम व्यवहार अमानवीय और अर्धमानवीय था, लेकिन यह मानना अधिक उपर्युक्त होगा कि दासों के साथ होनेवाले व्यवहार बहुत कुछ उसके मालिकों के स्वभाव पर निर्भर होता था। यह कल्पना करना आसान है कि एक ही घर में निरंतर संबंध के कारण मालिकों में दासों के प्रति एक प्रकार की सहानुभूति अवश्य उत्पन्न होती होगी। पुनः दासों के क्रियाकलापों से मालिकों में एक प्रकार की आवश्यकता जनित सहानुभूति की कल्पना करना स्वभाविक है। इस प्रकार के मानवीय व्यवहार का पुरातात्विक प्रमाण भी हमें उपलब्ध है। तिलोपामूर्ति अभिलेख में पॉच दासियों की शाहाबाद जिले में तुतराही की तीर्थयात्रा का उल्लेख है। इनका नाम अपने मालिक नायक प्रताप धवल के नाम के साथ अंकित है।

उपरोक्त विवरण से कुछ निश्चित निष्कर्ष की ओर पहुंचा जा सकता है। यथा प्राचीन काल से दास प्रथा की परम्परा मध्यकाल में जारी रही। लेकिन इस काल में हमें कई परिवर्तन देखने को मिलते है। सर्वप्रथम दासों की संख्या में अधिक वृद्धि हुई। दूसरा दासत्व सबके लिए निर्दिष्ट हो गया। जबकि कौटिल्य ने आर्यो को दास बनाने का विरोध किया है। तीसरा मौर्य काल की तरह दासों को आर्थिक क्रियाकलापों में शामिल नहीं किया गया। इस काल में दास घरेलू और निजी सेवा से अधिकाधिक संबध रहें। चतुर्थ यधपि दासों के साथ उचित व्यवहार के कुछ

प्रमाण मिलते है, लेकिन इसे अपवादों के रूप में ही देखा जा सकता हैं । सामान्य रूप से दासों के साथ अर्ध मानवीय व्यवहार होता रहा। मुसलमानों की सत्ता सुव्यवस्थित होने बाद दासों की स्थिति में बेहतरी के कुछ संकेत मिलने शुरू हो जाते हैं।

संदर्भ एवं पाद टिप्पणी

1. द्विजेन्द्र नारायण झा, पूर्वोक्त, पृ0 211
2. डी0 आर0 चानना, पूर्वोक्त, पू0 112
3. द्विजेन्द्र नारायण झा, पूर्वोक्त, पृ0 211
4. रामशरण शर्मा, अर्ली मीडियेवल इंडियन सोसायटी, ए स्टडी इन फ्यूडलाइजेसन, द्वितीय संस्करण, ओरियंट लांगमेन, कलकत्ता, 2003
5. डी0आर0 चानना, स्लेवरी इन एंसयेंट इंडिया,पीपुल्स पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली 1960, पृ0 1960 पृ0 57
6. द्विजेन्द्र नारायण झा एवं कृष्ण मोहन श्रीमाली (सं0), प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, गयोदस संस्करण, 1994 पृ0 210
7. एल0एन0 रंगराजन, कौटिल्यः इ अर्थशास्त्र, पैग्विन बुक्स दिल्ली, 1992
8. मेघातिथि की मनुस्मृति पर टीका, VIII, 45–47.

   लल्लन जी गोपाल, पूर्वोक्त पृ0 71
9. रामशरण शर्मा, अर्ली मीडियेवल इंडियन सोसायटी, ए स्टडी इन फ्यूडलाइजेसन, द्वितीय संस्करण, आरियंट लांगमेन, कलकत्ता 2003
10. लल्लन जी गोपाल द इकॉनामिक लाइफ ऑफ नार्दन, 700 AD–1200 AD

    मोतीलाल, बनारसी दास, दिल्ली, द्वितीय संशोधित संस्करण, 1989,पृ0–71
11. मेघातिथि की मनुस्मृति पर टीका VIII 46